बुंदेलखंड के सूखे का मतलब♣

बुंदेलखंड के घाव गहरे होते जा रहे हैं। इस इलाके के ताजा संकट के हल बेहद हल्के और सतही अंदाज़ में खोजने की कोशिश की जा रही है। एक सुनहरे अतीत से निरंतर सुखाड़ वाले इलाके में बदलने वाले बुंदेलखंड की मौजूदा समस्याओं को एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है। चारों तरफ पहाडी श्रंखलायें, ताल-तलैये और बारहमासी नालों के साथ काली सिंध, बेतवा, धसान, केन और नर्मदा नदिओं वाले क्षेत्र का वर्तमान बहुत दुखदायी हो चुका है। यहाँ की जमीन खाद्यान, फलों, तम्बाकू और पपीते की खेती के लिए बहुत उपयोगी मानी गई है। यहाँ सारई, सागौन, महुआ, चार, हर्र, बहेडा, आंवला, घटहर, आम, बैर, धुबैन, महलोन, पाकर, बबूल, करोंदा, समर के पेड़ खूब पाए जाते रहे हैं। यह इलाका प्रकृति के कितना करीब रहा है, इसका अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि बुंदेलखंड के ज्यादातर गांवों के नाम वृक्षों (जमुनिया, इम्लाई), जलाशयों (कुआँ, सेमरताल), पशुओं (बाघडबरी, हाथीसरा, मगरगुहा, झींगुरी, हिरनपुरी), पक्षियों, घास - पात या स्थान विशेष के पास होने वाली किसी ख़ास ध्वनि के आधार पर रखे गए पर अब इस अंचल को विकास की नीतियों ने सूखा इलाका बना दिया है। यहाँ प्राकृतिक संसाधनों के बाजारू दोहन की नीतिओं ने खेती को भी सूखा दिया। पिछले 10 वर्षों में बुंदेलखंड में खाद्यान उत्पादन में 55 फीसदी और उत्पादकता में 21 प्रतिशत की कमी आई है, फिर भी सरकार किसान उन्मूलक कृषि को संरक्षण देने के पक्ष में नहीं दीखती।

अनुपम मिश्र लिखते हैं कि बुंदेलखंड में जातीय पंचायतें अपने किसी सदस्य की अक्षम्य गलती पर जब दंड देती थीं तो उसे दंड में प्रायः तालाब बनाने को कहती थीं। बुंदेलखंड की औसत बारिश 95 सेंटीमीटर है, जिससे यहाँ पानी की कमी बनी रहती है। यही कारण है कि यहाँ कम बारिश में पनपने वाली फसलों को प्रोत्साहन दिया जाताए पर सरकार और कुछ बड़े किसानों ने सोयाबीन और कपास जैसे विकल्पों के चुना। पर पिछले बीसेक सालों में निजी आर्थिक हितों की मंशा को पूरा करने के लिए नकद फसलों को बढावा दियाए जमीन की नमी गयी तो गहरे नलकूप खोद कर जमीन का पानी खींच कर निकाल लिया और भू-जल स्रोतों को सुखाना शुरू कर दिया। सेंट्रल ग्राउंड वाटर बोर्ड बताता है कि बुंदेलखंड क्षेत्र के जिलों के कुओं में पानी का स्तर नीचे जा रहा है और भू-जल हर साल 2 से 4 मीटर के हिसाब से गिर रहा हैए वहीं दूसरी ओर हर साल बारिश में गिरने वाले 70 हजार मिलियन क्यूबिक मीटर पानी में से 15 हजार मिलियन क्यूबिक मीटर पानी ही जमीन में उतर पाता है। अब पूरे देश में सूखा पड़ रहा है। भारत की सरकार सूखा घोषित कर या ना करे, पर संकट तो विकराल हो ही चुका है।

♣ सचिन कुमार जैन, भोजन का अधिकार अभियान, मध्यप्रदेश, ई-7/226, प्रथम तल, धनवंतरी काम्पलेक्स के सामने, अरेरा कालोनी, शाहपुरा, भोपाल0755 - 4252789 / 9977704847

बुंदेलखंड में स्तिथि बेहद खतरनाक हो रही है। 1999 से 2008 के बीच के वर्षों में यहाँ बारिश के दिनों की संख्या 52 से घट कर 23 पर आ गई है। अब ऐसे में यदि 1000 मिलीमीटर बारिश हो भी जाए तो क्या पानी जमीन में उतर पायेगा, क्या तेज गति से गिरे पानी के खेतों की बाड़े रोक पाएंगी, क्या ऐसे में भू-जल स्तर बढ़ पायेगा, नहीं! अब इस इलाके के मुख्य समस्याएँ जल, जंगल और जमीन से जुडी हुई है, जो कभी उसकी ताकत हुआ करती थी। यहाँ की जमीन उपजाऊपन खो रहीं है जिसे उपजाऊ बनाने रखने की जरूरत है, पर ऐसा ना करके सरकार पडत भूमि को खनिज खदानों और सीमेंट के कारखानों के लिए बाँट रही है। सीमेंट के कारखाने केवल अपनी जमीन का ही उपयोग नहीं करते हैं बल्कि आसपास के सैंकडों एकड़ जमीन को बर्बाद कर देतें हैं, इससे बीमारियाँ भी बढती है। दालों के उत्पादन को सरकार ने बढावा नहीं दिया, जो कि शायद बुंदेलखंड के लिए एक अच्छा साधन और विकल्प हो सकता था, क्योंकि धान की तुलना में इसमें केवल एक तिहाई पानी ही लगता है।

एक तरफ तो इस साल फिर टीकमगढ़ (-56 फीसदी कम बारिश), छत्तरपुर (-54 फीसदी कम बारिश), पन्ना (-61 फीसदी कम बारिश), सागर (-52 फीसदी कम बारिश), दमोह (-61 फीसदी कम बारिश), दतिया (-38 फीसदी कम बारिश) सहित पूरा बुंदेलखंड अब तक के सबसे पीडादायक सूखे की चपेट में है, पर दूसरी तरफ यह संकट हमें कुछ सीखने के अवसर भी दे रहा है। इससे हमें यह साफ़ संकेत मिल रहे हैं कि सत्ता और समाज को अपनी विकास की जरूरतों और सीमाओं को संयम के सिद्धांत के साथ परिभाषित करना चाहिए। हम हमेशा यह नहीं कह सकते हैं कि सरकार की राहत से ही सूखे का मुकाबला किया जाना चाहिए, बल्कि समाज को इस मुकाबले के लिए ताकतवर और सजग बनाना होगा। सरकार पर निर्भरता सूखे और और विकराल बना देगी। यह बेहद जरूरी है कि तत्काल ऐसे औद्योगिकीकरण को रोका जाए जो पर्यावरण के चक्र को आघात पहुंचता हो। यह तय किया जाना जरूरी है कि भू-खनन, निर्वनीकरण और वायु मंडल में घातक गैसें छोड़ने वाले उद्योगों (जैसे सीमेंट के उत्पादन से मीथेन का उत्सर्जन होता है), की स्थापना नहीं की जायेगी, और तत्काल वन संवर्धन और संरक्षण का अधिकार समुदाय को सौंपा जाएगा।

भारत सरकार के सिंचाई एवं विद्युत मन्त्रालय के सन् 1985 के आंकडों के मुताबिक बुन्देलखण्ड में बारिश का 131021 लाख घन मीटर पानी हर साल उपलब्ध रहता है। इसमें से महज 14355 लाख घन मीटर पानी का ही उपयोग किया जा पाता है, बाकी का 116666 लाख घन मीटर बिना उपयोग के ही चला जाता है यानी पूरी क्षमता का 10।95 प्रतिशत ही उपयोग में लिया जाता है। आज भी स्थिति यही है। इसके लिए बुंदेलखंड की पुरानी छोटी-छोटी जल संवर्धन संरचनाओं के पुनर्निमाण और रख-रखाव की जरूरत थी, जिसे पूरा नहीं किया गया। इसके बजाये बुंदेलखंड में 15 बड़े बाँध बना दिए गए जिनमे गाद भर जाने के कारण उनकी क्षमताओं का 30 फीसदी हिस्सा ही उपयोग में लाया जा पा रहा है। इस इलाके के 1600 खूबसूरत ऐतिहासिक तालाबों में से अभी केवल 40 ही बेहतर स्थिति में हैं। बार-बार यह आंकडा पेश किया जाता है कि लाखों मिलियन लीटर पानी बेकार बह जाता है। इस सन्दर्भ में हमें थोडा अपने आप से यह सवाल पूछना चाहिए कि यदि यह पानी बह कर समुद्र में नहीं जाएगा तो समुद्रों का क्या हश्र होगा। जिस तरह का जल प्रबंधन सरकारें कर रही हैं, उससे नदियों का पानी या तो सूख रहा है (नर्मदा, सोन), या बाढें आ रही है (कोसी)। जहाँ पानी सूख रहा है, वहां समुद्र अपना पानी प्रवाहित करने लगा है, जिससे नर्मदा जैसी नदियों का पानी खारा हो रहा है। और बाढ़ तो तबाही

मचा ही रही है। अब सूखा केवल प्रकृति के व्यवहार से उपजी हुई स्थिति नहीं है, यह मानवीय समाज की असंयमित और गैर जवाबदेय विकास की प्रक्रिया का परिणाम भी है।

एक नजरिये को तरसता बुंदेलखंड

बुंदेलखंड को एक विकास के क्रांतिकारी नज़रिए की जरूरत है। इस नज़रिए में उसे अपने बारे में सोचने और अपने विकास के रूपरेखा गढ़ने की स्वतंत्रता मिल जाए तो सूखा भी हरा हो सकता है। ऐतिहासिक रूप से भी बुंदेलखंड प्रक्रति के प्रकोपों से जूझता रहा है। पानी का संकट वहां इसलिए पनपता रहा क्यूंकि वहां कि भोगोलिक और जमीनी स्थितियां पानी, बारिश के पानी को टिकने नहीं देती हैं। वहां जमीन में पत्थर भी है और कुछ इलाकों में अच्छी जमीन भी। यही कारण है कि बुंदेलखंड के समाजों और राजसत्ता ने तालाबों के निर्माण को तवज्जो दी और कृषि के तहत ऐसी फसलों को अपनाया जिनमे पानी कम लगता है। टोपोग्राफी ऊँची-नीची होने के कारण जब तालाब बनाने शुरु किये गए तो ऊपर के तालाबों को नीचे के तालाबों से नालीनुमा नहरों ऐसे जोड़ा गया जिससे जब ऊपर के तालाब भर जाएँ तो पानी उन नालिओं के जरिये नीचे के तालाबों की ओर बह कर चला जाए। इससे कम बारिश के पानी का भी अधिकतम उपयोग हो पाता था। बुंदेलखंड का समाज विपरीत परिस्थितियों में जीना सीख चुका था। जल स्रोतोंसे आसपास ही सभ्यताएं पनपी हैं, इनसे ही जीवन भी आगे बढा है। जहाँ पानी का खूब अच्छा प्रबनंधन हुआ वहां समाज का भी सार्थक विकास हुआ। बुंदेलखंड ने इस सिद्धांत को अच्छे से आत्मसात किया, यही कारण है कि बुंदेलखंड पनप पाया।

बुंदेलखंड में कुल 60000 हेक्टेयर जंगल है। मध्यप्रदेश में कुल क्षेत्र के 20 फीसदी इलाके में जंगल है, परन्तु बुंदेलखंड के केवल 8 फीसदी इलाके में जंगल है। यहाँ वन क्षेत्र बढाने के बजाये ऐसे उद्योगों के बढावा दिया जा रहा है, जो जंगल को बर्बाद कर देंगे और बचे-खुचे पानी के स्रोतों का विनाश कर देंगे। कम क्षेत्र में जंगल होने के कारण धरती की सतह की उपजाऊ भूमि लगातार बहती गई और जमीन पथरीली होती गई। इसे फिर से पैदा करने की जरूरत है। बुंदेलखंड की परिस्थितियों में भू-जल स्रोतों के अधिक दोहन बिल्कुल उपयुक्त नहीं है, यह विनाश का कारण हो सकता है, पर यहाँ नलकूपों के जरिये इसका खूब दोहन किया जा रहा है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र तीस लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। इनमें से 24 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य है परन्तु इनमें से मात्र चार लाख हेक्टेयर भूमि की ही सिंचाई हो पा रही है, क्यूंकि इस इलाके में खेती के विकास के लिए सिंचाई की ऐसी योजनायें नहीं बनाई गई, जिनका प्रबंधन कम खर्च में समाज और गाँव के स्तर पर ही किया जा सके। बड़े-बड़े बांधों की योजनाओं से 30 हज़ार हेक्टेयर उपजाऊ जमीन बेकार हो गई, ऊँची लागत के कारण खर्चे बढे, और तो और ये बाँध कभी भी दावों के मुताबिक परिणाम नहीं दे पाए। मध्यप्रदेश भारत की परिभाषा का हिस्सा है, जहाँ 5 वर्ष में एक बार साधारण सूखा पड़ना स्वाभाविक है, परन्तु वास्तविकता यह है कि बुंदेलखंड में पिछले 9 वर्षों में 8 बार गंभीर सूखा पड़ा है।

भारत में सबसे ज्यादा बीहड़ मध्यप्रदेश में फैला हुआ है। अब यह संदेह एक सच्चाई का रूप लेता जा रहा है कि सरकार जमीन को बीहड़ बनाने में जुटा हुई नज़र आती है, क्यूंकि बीहड़ होने का मतलब है ऐसी जमीन को

सरकारी तौर पर अनुपजाऊ घोषित किये जाने क प्रक्रिया शुरू होना। जब जमीन बीहड़ का रूप लेने लगती है तो वह कृषि और जंगल की जमीन की परिभाषासे बाहर हो जाती है और सरकार उसे कारपोरेट कम्पनिओं को बेंचने के लिए स्वतंत्र हो जाती है। चम्बल के इलाकों, ख़ास तौर पर मुरैऩा की हजारों हेक्टेयर जमीन को सरकार ने बड़ी कम्पनिओं के सौंपना शुरू कर दिया है। यही प्रक्रिया बुंदेलखंड में भी शुरू हो चुकी है। आश्चर्य है कि भारत की राज्य और केंद्र सरकारें समुद्र और पहाडों से जमीनें निकालने की योजनायें बना रही हैं, परन्तु मध्यप्रदेश में जमीन को बीहड़ होने से बचाने की कोई कार्ययोजना दिखाई नहीं देती, जबकि इन जमीनों को समतल करना और उपजाऊ-उपयोगी बनाना आसान है। ऐतिहासिक रूप से बुंदेलखंड ही एक मात्र ऐसा इलाका था तो मुग़ल साम्राज्य के अधीन नहीं रहा, क्यूंकि प्राकृतिक संसाधनों और बुनियादी जरूरतों जैसे अनाज, पानी और पर्यावरण के मामलों में यह आत्मनिर्भर राज्य था। इसी आत्मनिर्भरता ने बुंदेलखंड को स्वतंत्र रहने की ताकत दी। इतना ही नहीं इसी ताकत के दम पर यह इलाका अकबर के साम्राज्य में भी शामिल नहीं हुआ।

बुंदेलखंड में जंगल, जमीन पर घांस, गहरी जड़ें ना होने की कारण तेज गति से गिरने वाले पानी बीहड़ पैदा कर रहा है। हम सब को पता है कि चम्बल के इलाके में बीहड़ों में लाखों एकड़ जमीन को बर्बाद करही कई सामाजिक और आर्थिक समस्याएं पैदा की हैं, जिनसे हम निपट नहीं पा रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों में नदी और जल स्रोतों की सीमाओं से सटे क्षेत्रों में बीहड़ बढ़ता है। पिछले 20 वर्षों में यहां खूब भू-क्षरण हुआ है। बुंदेलखंड में छत्तरपुर के आस-पास और केन-धसान नदी के बीच 1.05 लाख एकड़ के क्षेत्र में जमीन बीहड़ का रूप लेती जा रही है। पन्ना जिले में 50000 एकड़ जमीन बीहड़ हो रही है, टीकमगढ़ में 12000 एकड़ में बीहड़ जम रहा है। दतिया में 70000 एकड़ और दमोह में 62000 एकड़ जमीन बीहड़ों की चपेट में आती दिख रही है। ऐसा लग रहा है कि बीहड़ का यह विस्तार बुंदेलखंड को चंबल की धाटियों से जोड देगा। तब बुंदेलखंड सरकार के लिये विकास का नही कानून-व्यवस्था का मसला होगा। बुंदेलखंड के इस बीहड़ीकरण के कारण 471 गांव के सामने अस्तित्व का खतरा खड़ा हो गया है। और यह सब हो रहा ठे, क्यूंकि यहाँ के विकास की नीतियां स्थानीय समुदाय और प्रकृति से बिना सामंजस्य बिठाये बनाई और लागू की जा रही हैं।

बुंदेलखंड के अनुभव इस वाक्य को सिद्ध करते हैं कि केवल बारिश में कमी का मतलब सुखाड़ नहीं है, बल्कि व्यावहारिक कारणों और विकास की प्रक्रिया के कारण पर्यावरण चक्र में आ रहे बदलाव सूखे के दायरे को और विस्तार दे रहे हैं। हमारे नीति नियंता अब भी यह नहीं समझ नहीं पा रहे हैं कि कृषि भारतीय समाज के लिए केवल एक आर्थिक व्यवहार नहीं है। यह भारत की आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा का आधार भी है। जब उत्पादन कम होता है, या सूखा-बाढ़ के हालत होते हैं तो केवल किसान संकट में नहीं आता है, बल्कि बाज़ार में बढ़ने वाली महंगाई हर तबके के लिए चिंता की लकीरें खेंच देती है। मतलब साफ़ है कि कृषि का संकट समाज के हर तबके की क्रय क्षमता को सीमित कर देता है, और इससे विकास की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। भारत कोई छोटा-मोटा देश नहीं है, जिसे सरकार अपनी गोद में बिठा कर खिला-पिला लेगी, यह 114 करोड़ जिन्दा इंसानों का देश है। समझिये सरकार!